परिन्दे :
पाठ, दर-पाठ

मोहन कुमार

हिन्दी कहानी का उद्भव और विकास बीसवीं शताब्दी में हुआ हिन्दी कहानी का स्रोत हितोपदेश, पंचतंत्र व जातक कथा आदि में ढूंढने का प्रयास किया जाता है। आधुनिक हिन्दी कहानी का प्रवर्तन भारतेंदु युग में हुआ। माधवराव सप्रे की कहानी 'एक टोकरी भर मिट्टी' को हिन्दी की पहली कहानी माना जा रहा है। इसके अतिरिक्त हिन्दी के प्रारंभिक कहानीकारों में इंशाल्लाह खां की 'रानी केतकी की कहानी', किशोरी लाल गोस्वामी की 'इंदुमति', बंग महिला यानी राजेन्द्र बाला घोष की 'दुलाई वाली', रामचंद्र शुक्ल की 'ग्यारह वर्ष का समय' आदि कहानियाँ प्रसिद्ध हैं। अन्य विधाओं की तरह हिन्दी कहानी को भी अध्ययन की सुविधा के लिए कई भागों में बाँटा गया है। चूँकि प्रेमचंद का हिन्दी कहानी विधा को प्रतिष्ठित करने में महत्वपूर्ण भूमिका और योगदान रहा है। इसलिए प्रेमचंद को केन्द्र में रखकर हिन्दी कहानी का काल विभाजन किया जाता है। इस आधार पर हिन्दी कहानी के विकास के कालक्रम को चार भागों में बांट सकते हैं- प्रेमचंदपूर्व हिन्दी कहानी, प्रेमचंदयुगीन हिन्दी कहानी, प्रेमचंदोत्तर हिन्दी कहानी और स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी। स्वातंत्र्योत्तर युग के कहानीकारों में निर्मल वर्मा एक महत्वपूर्ण नाम हैं। स्वाधीनता के बाद भारतीय समाज की परिस्थितियाँ तेजी से बदलीं। व्यक्ति के स्वतंत्र चेतना का तेजी से विकास हुआ। समाज और जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में नयेपन की मांग की जाने लगी। साहित्य में भी नयेपन का प्रवेश हुआ। नयी कहानी का आरंभ इसी स्वातंत्र्योत्तर दौर में हुआ।

निर्मल वर्मा हिन्दी के प्रतिष्ठित कथाकार थे। आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य में उनका महत्वपूर्ण योगदान है। हिन्दी कथा साहित्य में आधुनिकताबोध का समावेश करने वाले रचनाकारों में उनका विशिष्ट स्थान है। हिन्दी कहानी विधा के स्वरुप को बदलने में उनका महत्वपूर्ण अवदान है। यद्यपि निर्मल वर्मा को हिन्दी में भावपूर्ण, गंभीर और अवसाद से भरी हुई कहानियाँ लिखने के लिए याद किया जाता है तथापि निर्मल वर्मा स्वाधीन भारत के सबसे महत्वपूर्ण कहानीकारों में से एक हैं।

उनकी सात कहानियों का पहला संग्रह 'परिन्दे' शीर्षक से सन् 1959 में प्रकाशित हुआ । इस संग्रह में शामिल उनकी कहानियां हैं- 'अंधेरे में', 'तीसरा गवाह', 'डायरी का खेल', 'माया का मर्म', 'पिक्चर पोस्टकार्ड', 'सितंबर की एक शाम' और 'परिन्दे' । संग्रह की अंतिम कहानी के नाम पर संग्रहका शीर्षक रखा गया- 'परिन्दे' । प्रकाशन के बाद से ही ये कहानियाँ लगातार कहानी के पाठकों-समीक्षकों का ध्यान आकर्षित करती रही हैं । परिंदे कहानी को जो लोकप्रियता प्राप्त हुई, उसका अपना अलग वैशिष्ट है। इसे हिन्दी की पहली नयी कहानी माना जाता है। स्पष्ट है कि परिन्दे कहानी का हिन्दी कहानियों के बीच एक महत्वपूर्ण स्थान है। प्रसिद्ध समीक्षक नामवर सिंह ने इस कहानी के संबंध में लिखा है- "व्यक्ति-चरित्र वही है, जीवन स्थितियाँ भी रोज की जानी-पहचानी ही है, लेकिन निर्मल के हाथों वही स्थितियाँ इतिहास की विराट नियति बन कर खड़ी हो जाती हैं और उनके सम्मुख खड़ा व्यक्ति सहसा अपने को असाधारण रूप से अकेला पाता है। और उसकी जबान से निकला हुआ मामूली-सा वाक्य एक युगव्यापी प्रश्न बन जाता है।"[1] संग्रह के रूप में प्रकाशित होने से पूर्व परिन्दे कहानी अमृतराय के संपादन में 'हंस' पत्रिका के अर्द्धवार्षिक संकलन में सन् 1957 में प्रकाशित हुई थी । संग्रह के रूप में प्रकाशन के बाद नामवर जी ने आकाशवाणी इलाहाबाद और 'कृति' के लिए इसकी समीक्षा लिखी और कहानी के तौर पर परिन्दे को हिन्दी की पहली नयी कहानी और एक संग्रह के रूप में इसे 'नई कहानी का पहला संग्रह' घोषित किया।

परिंदे कहानी में प्रेम का भी अद्भुत चित्रण हुआ है । इस कहानी के सभी प्रमुख पात्रों के जीवन में प्रेम अपूर्ण और अधूरा है । परंतु कोई भी पात्र प्रेम से वंचित नहीं है । सभी महत्वपूर्ण पात्र किसी न किसी से प्रेम करते हैं ।

निर्मल वर्मा की कहानी परिंदे के आरंभ में न्यूज़ीलैंड मूल की ख्यातिलब्ध आधुनिकतावादी अंग्रेजी कथाकार कैथरीन मैन्सफील्ड की एक पंक्ति उद्धृत की गई है । अंग्रेजी में लिखी गई वह पंक्ति है- "Can we do nothing for the dead? And for a long time the answer had been-nothing !"[2] इन पंक्तियों का भावार्थ है- क्या हम मरे हुए के लिए कुछ नहीं कर सकते ? और एक लंबे समय के बाद भी जवाब है कुछ नहीं ! उपरोक्त पंक्तियां निर्मल वर्मा की इस कहानी को समझने के लिए कुंजी का कार्य करती हैं । परिंदे कहानी की नायिका और उसके अन्य सभी पात्र एक गहरी निराशाबोध और मृत्युबोध से ग्रस्त हैं। इस कहानी को पढ़ते हुए कहीं भी इन पात्रों के जीवन में उल्लास और हर्ष आदि सकारात्मक भावों का निशान नहीं मिलता है । बल्कि सर्वत्र पात्रों पर निराशा और मृत्यबोध की बहुत ही गहरी काली छाया पड़ी मिलती है। पूरी कहानी में मृत्यु बोध की गहराई और उसकी भयावहता का यथार्थ पसरा हुआ दिखाई पड़ता है। निर्मल वर्मा के चरित्र आधुनिक युग के चरित्र हैं परंतु इनकी निराशा आदिम है । ये पात्र सोचते हैं कि अंततः मनुष्य की यात्रा कहां तक है और क्यों है ? अस्तित्व और औचित्य का प्रश्न इन पात्रों के मनोभाव पर हावी है । कहानी का एक प्रमुख पात्र ह्यूबर्ट पूछता है- "डॉक्टर क्या, मृत्यु ऐसे ही आती है ?"[3] कहानी के पात्रों को तमाम चीजों में मृत्यु और निराशा की गहरी छाया दिखाई पड़ती है- "गिरता हुआ हर 'पोज' एक छोटी सी मौत है, मानो घने छायादार वृक्षों की काँपती छायाओं में कोई पगडण्डी गुम हो गई हो, एक छोटी सी मौत जो आने वाले सुरों को अपनी बची-खुची गुंजों की साँसें समर्पित कर जाती है... जो मर जाती है किन्तु मिट नहीं पाती, मिटती नहीं इसलिए मरकर भी जीवित है, दूसरे सुरों में लय हो जाती है।"[4]

मनुष्य जीवन की कई विशेषताएँ और विसंगतियाँ होती हैं। बहुत कुछ ऐसा होता है जिसे व्यक्ति जानते हुए भी नहीं जानना चाहता। वह सत्य को जानता

तो है पर वह उसे मानना नहीं चाहता। वह जानता है की मृत्यु जीवन का अनिवार्य सत्य है, सुख-दुख, लाभ-हानि, पीड़ा-हर्ष आदि से ऊपर एक अनिवार्य और अटल सत्य है और वह है मृत्यु। परंतु फिर भी मनुष्य कभी इसके बारे में नहीं सोचता वह हर समय आगे बढ़ना चाहता है। परिवार, मित्र, संबंधी आदि मनुष्य के सुख और दुख में उसके साथ होते हैं। अपनों के सहयोग से मनुष्य बड़े से बड़े दुख को भी सह लेता है परंतु जब वही मनुष्य अकेला होता है तब उसके मन में जो निराशा का भाव आता है वह बहुत ही घातक होता है। इस अवस्था में वह सकारात्मक सोच और संकल्प से अपने दु:खों को कम करने का प्रयत्न करता है। लतिका कहती है- "हर साल ऐसा ही होता है, मि. ह्यूबर्ट। फिर कुछ दिनों बाद विण्टर स्पोर्ट्स के लिए अंग्रेज टूरिस्ट आते हैं। हर साल मैं उनसे परिचित होती हूँ। वापिस लौटते हुए वे हमेशा वादा करते हैं कि अगले साल भी आएंगे, पर मैं जानती हूं कि वे नहीं आएंगे, वे भी जानते हैं कि वे नहीं आएंगे, फिर भी हमारी दोस्ती में कोई अंतर नहीं पड़ता।"[5]

सन् 1955 ई. के आसपास भारत में आजादी से मोहभंग, तनाव और नई राजनीतिक-सामाजिक परिस्थितियों में नयी रचना दृष्टि का विकास हुआ। सन् 1954-55 ई. के आसपास हिन्दी कहानी अपने विकसित रूप में नई कहानी के रूप में विकसित हुई। नयी कहानी का संसार विविधताओं से भरा हुआ है। कहानी का यह आंदोलन अपने समय की संश्लिष्टताओं की रचनात्मक अभिव्यक्ति है। आधुनिकता बोध और यथार्थ की वस्तुनिष्ठ अभिव्यक्ति इस दौर की कहानियों में हुई है। शहरी मध्यम वर्ग इस दौर में उपजी आधुनिकता के नए प्रवृत्तियों के साथ परिवार समाज स्त्री-पुरुष संबंधों के पड़ताल और जीवन की विसंगतियों और विडंबनाओं को इस दौर की कहानियों में कथ्य बनाया गया। यथार्थवाद, अति-यथार्थवाद, अस्तित्ववाद और आधुनिकतावाद जैसे विचारों को नई कहानी में भारतीय परिवेश के साथ विवेचित-विश्लेषित किया गया। कहानी और नई कहानियां जैसी लघु पत्रिकाएं इसके लिए मंच बनी। हिन्दी के प्रसिद्ध आलोचक डॉ. नामवर सिंह अपनी किताब 'कहानी नई कहानी' में 'नई कहानी की पहली कृति परिंदे' शीर्षक लेख में निर्मल वर्मा की कहानियों खासकर परिंदे पर विचार करते हुए लिखते हैं- "फ़कत सात कहानियों का संग्रह 'परिंदे' निर्मल वर्मा की ही पहली कृति नहीं है बल्कि जिसे हम नयी कहानी कहना चाहते हैं उसकी भी पहली कृति है। पढ़ने पर सहसा विश्वास नहीं होता कि ये कहानियां उसी भाषा की हैं जिसमें अभी तक शहर, गांव, कस्बा और तिकोने प्रेम को ही लेकर कहानीकार जूझ रहे हैं। 'परिन्दे' से यह शिकायत दूर हो जाती है कि हिन्दी कथा साहित्य अभी पुराने सामाजिक संघर्ष के स्थूल धरातल पर ही 'मार्कटाइम' कर रहा है। समकालीनों में निर्मल पहले कहानीकार हैं जिन्होंने इस दायरे को तोड़ा है- बल्कि छोड़ा है; और आज के मनुष्य की गहन आंतरिक समस्या को उठाया है।"[6]

प्रेम का मनुष्य के जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है। परिंदे कहानी में प्रेम का भी अद्भुत चित्रण हुआ है। इस कहानी के सभी प्रमुख पात्रों के जीवन में प्रेम अपूर्ण और अधूरा है। परंतु कोई भी पात्र प्रेम से वंचित नहीं है। सभी महत्वपूर्ण पात्र किसी न किसी से प्रेम करते हैं। लतिका, जूली, ह्यूबर्ट, डॉक्टर मुखर्जी जैसे चरित्र प्रेम करते हैं। मगर विडंबना यह है कि उनका प्रेम अधूरा और अपूर्ण है। लतिका कैप्टन गिरीश नेगी से प्रेम करती है लेकिन वह युद्ध में मारा जाता है। अतः लतिका का प्रेम अपूर्ण रह जाता है। उसके जीवन में प्रेम का अभाव है इसलिए जब वह जूली के पास किसी मिलिट्री अफसर का प्रेम पत्र देखती है तो वह पहले तो उससे रोकती-समझाती है परंतु फिर मन-ही-मन सोचती है कि क्या वह अपने अभाव का बदला दूसरों से नहीं ले रही है। दरअसल लतिका की समस्या आधुनिक समाज में मनुष्य मात्र की समस्या है। सभी अपने अधूरे प्रेम का बदला जाने-अनजाने दूसरों के मार्ग में बाधा बनकर ले रहे हैं। डॉक्टर मुखर्जी को अपने

देश बर्मा (रंगून) से बेइंतहा प्यार है । डॉक्टर मुखर्जी विदेशी धरती पर मरना नहीं चाहते हैं- "बातों के दौरान डाक्टर अक्सर कहा करते हैं- मरने से पहले मैं एक दफा बर्मा जरूर जाऊंगा और तब एक क्षण के लिए उनकी आंखों में एक नमी-सी छा जाती ।"[7] वरिष्ठ साहित्यकार रामदरश मिश्र के विचार में 'परिन्दे प्रतीक हैं उन टूटे हुए प्रेमियों के जो अपनी-अपनी जगहों से टूटकर उस पहाड़ी स्थान पर एकत्र हो गये हैं । लतिका, डॉ. मुखर्जी, मिस्टर ह्यूबर्ट भी तो परिन्दे ही हैं किन्तु परिन्दे तो एक ठहराव के बाद मैदान की ओर उड़ जायेंगे किन्तु वे तीनों कहाँ जायेंगे? वे तो उसी सुनसान पहाड़ी स्थान पर एक साथ होते हुए भी अलग-अलग रहने के लिए अभिशप्त हैं ।'

परिंदे मानव नियति की कहानी है । मनुष्य के जीवन का उद्देश्य आखिर क्या है ? मनुष्य की यात्रा कहां तक है ? मनुष्य कहां पहुंचेगा ? अर्थात् मनुष्य का अस्तित्व और उसकी जीवन-यात्रा का प्रश्न इस कहानी में हमारे सामने उपस्थित होता है । 'आख़िर हम कहां जाएंगे ?' - यह प्रश्न इस कहानी के केंद्र में है । कहानी के सभी प्रमुख पात्र अपनी नियति के प्रति अनिश्चित हैं । खासकर कहानी की नायिका लतिका और डॉक्टर मुखर्जी तो अपने घर भी नहीं जाते हैं । दिनभर उड़ने के बाद परिंदे भी शाम को वापस अपने घोंसले में लौट आते हैं लेकिन आधुनिक समाज में मनुष्यों की दशा इतनी बदतर है कि वे लौट कर अपने घर भी नहीं जा पाते हैं । विकास और तरक्की के तमाम दावों और प्रतिमान स्थापित करने के बाद भी मनुष्य जीवन की यही स्थिति और नियति है । डॉ. नामवर सिंह ने लिखा है कि "पहाड़ के पीछे से आते हुए पक्षियों के झुंड को देखकर परिन्दे की लतिका चलते-चलते सोचती है: 'क्या वे सब प्रतीक्षा कर रहे हैं ? लेकिन कहाँ के लिए, हम कहाँ जाएंगे ?' प्रश्न मामूली है लेकिन कहानी के माहौल में वह सिर्फ पक्षियों का या लतिका का व्यक्तिगत प्रश्न नहीं रह जाता । जैसे इस प्रश्न से लतिका, डॉक्टर मुखर्जी, मि. ह्यूबर्ट सबका संबंध है- इन सबका और इनके अलावा भी और सबका । देखते-देखते प्रेम की एक कहानी मानव-नियति की व्यापक कहानी बन जाती है और एक छोटा-सा वाक्य पूरी कहानी को दूरगामी अर्थवृत्तों से वलित कर देता है । हम कहां जाएंगे यह वाक्य सारी कहानी पर अर्थ गंभीर विषाद की तरह छाया रहता है ।"[8]

सन् 1940 और 1950 के दशक में अस्तित्ववाद पूरे यूरोप में एक विचारक्रांति के रूप में उभर कर सामने आया । यूरोप के दार्शनिक व विचारकों ने इसमें अपना योगदान दिया । इनमें ज्यां-पाल सार्त्र, अल्बर्ट कामू व इंगमार बर्गमन आदि महत्वपूर्ण हैं । निर्मल वर्मा की परिन्दे कहानी को पढ़ते हुए इस कहानी पर पाश्चात् अस्तित्वादी दर्शन का प्रभाव स्पष्ट तौर पर परिलक्षित होता है । 'अस्तित्ववाद' मानव केंद्रित दृष्टिकोण हैं । अर्थात् इसमें सम्पूर्ण जगत में मानव को सबसे अधिक महत्ता प्रदान की जाती है । अस्तित्ववादी विचार या प्रत्यय की अपेक्षा व्यक्ति के अस्तित्व को अधिक महत्त्व देते हैं । मनुष्य के अर्थ की खोज की धारा में हताशा या निराशा का भी बहुत बड़ा भाग होता हैं । अस्तित्वाद के अनुसार दुख और अवसाद को जीवन के अनिवार्य एवं काम्य तत्त्वों के रूप में स्वीकार करना चाहिए । व्यक्ति को अपनी स्थिति का बोध दु:ख या त्रास की स्थिति में ही होता है । पीड़ा और दुःख मनुष्य को अपने जीवन के अर्थ को खोजने में सहायता करता हैं । मनुष्य जब भी किसी असहाय या इस तरह की परिस्थिति से गुज़रता है जिसका परिणाम उनके वश में नहीं होता है तब उसे स्वयं के अस्तित्व के बोध होने की संभावना अधिक होती है । परिन्दे कहानी को पढ़ने के बाद यह महसूस होता है कि अस्तित्वाद की उपरोक्त विशेषताएं इस कहानी में मिलती हैं । कहानी के पात्र दु:ख और निराशा के बीच अपने और जीवन के अस्तित्व और सार्थकता की तलाश करते हैं । लतिका डॉक्टर से पूछती है- "डॉक्टर सबकुछ होने के बावजूद वह क्या चीज है जो हमें चलाये चलती है, हम रुकते हैं तो भी अपने रेले में वह हमें घसीट ले जाती है ।"[9]

निर्मल वर्मा को 'स्मृति का कथाकार' कहा जाता है। उनकी कहानियों में अतीत की स्मृतियां दर्ज हुई हैं। परिन्दे कहानी पर भी इसका प्रभाव है। दु:ख और व्यथा और उससे उपजी खामोशी उनके पात्रों की विशेषताएं हैं। स्थितियाँ और वातारण भी निर्मल वर्मा की कहानियों में प्रमुखता से उपस्थित होता है। परमानन्द श्रीवास्तव के मतानुसार निर्मल वर्मा की यथार्थ संवेद्यता आत्मचेतना पर आधारित होने के कारण अधिक गहन और तीव्र है। निर्मल वर्मा पर भारतीय संवेदना के कथाकार न होने जैसे कई आरोप लगाये गये परन्तु अपने कहानियों के माध्यम से उन्होंने हिन्दी कथा साहित्य में अपना अलग स्थान बना लिया। परिन्दे सहित निर्मल वर्मा की अन्य कहानियों के संबंध में उनकी ये पंक्तियां बिल्कुल सही और सटीक साबित होती हैं कि 'जब कभी सोचता हूँ, हर बार कोई नया नुक्ता उभर आता है, जिसकी तरफ पहले ध्यान नहीं गया था या किसी बात का नया पहलू नज़र आने लगता है जिसे पहले न देख सका था।'

यह कहानी कई मायनों में पूर्व की हिन्दी कहानियों से भिन्न और विशिष्ट है। कहानी के चरित्रों और घटनाक्रम में एक विशेष अंतर्संबंध दिखाई पड़ता है। स्नो-फॉल की तरह ही इस कहानी के हर किरदार में ठंडापन व्याप्त है जो बर्फ की तरह ठंडी और जमी हुई है। ऐसा लगता है कि यह ठंडापन और जमाव एक लंबे समय से कायम है और जो कहानी के अंत तक कायम रहती है। नियति का प्रश्न भी इस कहानी में बेहद गंभीरता के साथ उठाया गया है। डॉक्टर मुकर्जी ह्यूबर्ट से पूछते हैं- "क्या तुम नियति पर विश्वास करते हो ?"[10] दरअसल कहानी के पात्र अपने जीवन की नियति से भिज्ञ-अनभिज्ञ होने के द्वंद से जूझते हुए उसे स्वीकार करने से कतराते हुए प्रतीत होते हैं। इसलिए आधुनिक होने के बाद भी निर्मल वर्मा की इस कहानी के पात्र अपेक्षाकृत कम मजबूत और परिस्थितियों से सामंजस्य बिठाने का प्रयास करने वाले पात्रों के रूप में उभरकर सामने आते हैं। इनमें परिस्थितियों से संघर्ष और उनपर विजय प्राप्त करने की प्रवृत्ति के बजाय परिस्थितियों से समझौता करने की सामंजस्यवादी प्रवृत्ति ज्यादा दिखाई पड़ती है। अस्तित्व की तलाश में भटकते परिंदों के माध्यम से इस कहानी में जीवन के अनिवार्य प्रश्नों पर दार्शनिक ढंग से विचार किया गया है जिसका प्रभाव बहुत व्यापक, गहरा और तीव्र है।

संदर्भ सूची:

1. सिंह, नामवर. (2016). कहानी नयी कहानी. इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन. पृ. 52
2. ____(2011). कहानी संग्रह. संपादित- हिन्दी विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय. वाराणसी : विश्वविद्यालय प्रकाशन. पृ. 160
3. यादव, राजेंद्र (सं.). (2014). एक दुनिया समानांतर. नई दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन. पृ. 178
4. वही, पृ. 178
5. वही, पृ. 181
6. सिंह, नामवर. (2016). कहानी नयी कहानी. इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन. पृ. 52
7. यादव, राजेंद्र (सं.). (2014). एक दुनिया समानांतर. नई दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन. पृ. 168
8. सिंह, नामवर. (2016). कहानी नयी कहानी. इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन. पृ. 52
9. यादव, राजेंद्र (सं.). (2014). एक दुनिया समानांतर. नई दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन. पृ. 191
10. वही, पृ. 170-171 स्व

तस्वीर इन्टरनेट से साभार